RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-10
October-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i10.023

नवपाषाण संस्कृति : खाद्य संग्रह से खाद्य उत्पादन की ओर

सत्यजीत कुमार

शोधार्थी (एम.ए.) हिन्दू कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

नवपाषाण कालीन संस्कृतियाँ पाषाणकाल के अंतिम चरण में विकसति हुई। इस काल की पहचान घिसे हुए एवं पॉलिश किए औजारों तथा मृदभांडों से की जाती हैं इन्हीं के कारण यह पहले के कालों – पुरापाषाणकाल और मध्यपाषाणकाल से अलग माना जाता है। 19वीं सदी में डेनमार्क के प्रागैतिहासकार थॉमसन ने सर्वप्रथम 'नवपाषाण' शब्द का प्रयोग किया था। लेकिन गार्डन चाइल्ड ने सबसे पहले नवपाषाणकालीन संस्कृतियों के सामाजिक–आर्थिक महत्व को उजागर किया तथा इस काल में कृषि और पशुपालन गतिविधियों के विकास को रेखांकित किया। मानव द्वारा की गई इस प्रगति पर जोर देते हुए उन्होंने इसे 'नवपाषाण क्रांति' की संज्ञा दी है।

नवपाषाण जीवन पद्धति के प्रादुर्भाव ने कृषि कर्म के माध्यम से एक क्रांति का सूत्रपात कर दिया। कृषि और पशुपालन का प्रारंभ, वस्तुतः इस पद्धति का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। लेकिन यह कोई आकस्मिक और आमूल परिवर्तन नहीं था और पूर्ववर्ती काल के कुछ क्रियाकलाप में इन परिघटनाओं के बीच विद्यमान थे। यह संभव है कि परिवेशगत बदलावों के दौर से गुजरनेवाले क्षेत्रों में और अपनी जीवन–पद्धति में सुधार लाने के लिए प्रयत्नशील स्त्रियों तथा पुरुषों की विलक्षणता के फलस्वरूप इस परिवर्तन की गति तेज हो गई हो। परन्तु उसका अंतिम परिणाम विकासात्मक था, क्योंकि उसने भोजन प्राप्त करने की प्रक्रिया को बदल दिया और मनुष्य, पशु तथा भूमि के बीच नए प्रकार के संबंध स्थापित करने का रास्ता खोल दिया।

आधुनिक अनुसंधानों से पता चलता है कि जहाँ कहीं भी नवपाषाणकालीन संस्कृतियाँ विकसित हुई वहाँ खेती स्वभाविक एवम् स्वतंत्र तौर पर विकसित हुई। इसलिए दुनिया में संभवतः ऐसे कई स्थल रहे होगे, जहाँ मूल कृषक समुदाय रहे होंगे। दरअसल मानव का शिकार से खेती की तरफ जाने की प्रक्रिया को समझने के लिए कुछ बातों का अध्ययन जरूरी है, जैसे जलवायु दशाओं में परिवर्तन तकनीकी अनुभव और जनसंख्या में बढ़ोतरी जलवायु में आए मारी परिवर्तन से होलोसीन युग का प्रारंभ हुआ। इस युग में पेड़ पौधों में खूब वृद्धि हुई और मानव के लिए पर्याप्त खाद्य संसाधन मिलने लगे तथा भोजन के लिए उसकी जानवरों पर निर्भरता कम हो गई।

हजारों साल तक मनुष्य आखेटक–संग्राहक जीवन शैली से संतुष्ट रहा, किन्तु क्या कारण हो सकता है कि किसी काल बिंदु के बाद कुछ समुदायों ने कृषि एवं पशुपालन में रूचि दिखानी शुरू की? इतिहासकारों में इस विषय विभिन्न तर्क है जिसे इस लेख में दिखाने का प्रयास किया गया है।

गार्डन चाइल्ड का मानना है कि प्लीस्टोसीन काल के अन्त में होने वाले पर्यावरणीय बदलावों ने खाद्य उत्पादन के लिए संभावनाएँ खड़ी कर दी। चाइल्ड का तर्क है कि लगभग 10,000 साल पहले पश्चिम एशिया के विभिन्न भागों में शुष्क मौसम का प्रादुर्भाव होने लगा, क्योंकि गर्मी में होने वाली बरसात अब उत्तर की दिशा में होने लगी। जलवायु की शुष्कता ने मनुष्य, वनस्पति और जन्तुओं को उपलब्ध जल स्रोतों के इर्द–गिर्द एक साथ रहने के लिए मजबूर कर दिया। इसके बीच विकसित हुई निकटता के परिणामस्वरूप इनके बीच परस्पर निर्भरता की स्थिति उत्पन्न हो गई।

चाइल्ड के सिद्धांत को रॉबर्ट जे. बेडवुड ने चुनौती दी और कहा कि केवल पर्यावरणीय परिवर्तन को कृषि के उद्भव का आधार नहीं माना जा सकता है। उसने तर्क दिया कि प्लीस्टोसीन काल के अंतर्गत पहले भी कई बार मौसम में महत्वपूर्ण बदलाव आए थे, किन्तु तब कृषि की ओर संक्रमण नहीं हुआ। ब्रेडवुड का सुझाव है कि जन्तुओं और वनस्पतियों को सबसे पहले कुछ विशेष नाभिक केंद्रों में मानवीय नियंत्रण में लाने का प्रयास किया गया। ऐसे क्षेत्रों में पालतूकरण उस नैसर्गिक प्रक्रिया की उपज थी जो मानव के अनुभवों और अपने पर्यावरण से बेहतर परिचित होते जाने के कारण उत्पन्न हुई थी।

ल्यूविस आर. बिनफोर्ड (1968) ने ब्रेडवुड के सिद्धांत को इस आधार पर निरस्त कर दिया कि पुरातत्व विज्ञान की दृष्टि से उसका परीक्षण नहीं किया जा सकता है। बिनफोर्ड ने नृजाति–पुरातत्व विज्ञान के नणों की ओर इशारा करते हुए कहा कि जब मानव जनसंख्या और उसके पास उपलब्ध खाद्य संसाधनों के बीच स्वाभाविक तारतम्य स्थापित हो जाता है तब वैसे समुदाय जीवन–यापन के भोजन के लिए स्रोतों की ओर आकर्षित नहीं होते ओर न ही उस उद्देश्य से नई रणनीतियों की गुंजाइश को टटोलता हैं इसके विपरीत ऐसा देखा गया है कि वैसे समुदाय अपने प्राकृतिक संसाधनों का उसकी पूरी क्षमता से कहीं कम में ही काम चलाना पसंद करते हैं।

RRIJM 2015, All Rights Reserved

बिनफोर्ड ने कृषि के उद्‌भव के पीछे जनसंख्या पर पकड़ वाले बाहरी दबाव के कारणों को रेखांकित किया है। इनके अनुसार, प्लीस्टोसीन काल के अंत में समुद्रतल के वृद्धि के कारण तटीय क्षेत्र की आबादी भीतरी भागों में बसने लगी। जिसके फलस्वरूप भीतरी क्षेत्र का मनुष्य–भोजन संतुलन प्रभावित होने लगा और अतिरिक्त खाद्यान्न की आवश्यकता ने उन्हें नई रणनीतियों को तलाशने के लिए बाध्य कर दिया।

केण्ट फ्लैनरी (1969) ने उन घटनाओं की चिन्हित करने के बजाए वैसी प्रतिक्रियाओं को समझने का प्रयास किया जिनसे आखेट और संग्रहण के स्थान पर कृषि और पशुपालन की शुरुआत हुई होगी। इनको समझने के लिए उसने खाद्यान्न आपूर्ति की दो भिन्न प्रकार की व्यवस्थाओं को रेखांकित किया (1) खाद्यान्न आपूर्ति की नकारात्मक प्रतिपुष्टि, जिसके अंतर्गत भोजन और मनुष्य के बीच संतुलन बना रहता है तथा किसी परिवर्तन को निरूत्साहित किया जाता है। (2) तथा खाद्यान्न आपूर्ति की सकारात्मक प्रतिपुष्टि जहाँ मानवीय हस्तक्षेप और प्रयासों से खाद्य संसाधनों में वास्तविक वृद्धि हो।

हाल के वर्षों में किए गए अध्ययनों से अब यह स्पष्ट हो चला है कि कृषि और पशुपालन का विकास पर्यावरणीय परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में ही हुआ है, किन्तु आधुनिक अवधारणाएँ चाइल्ड की अवधारणाओं से काफी भिन्न हो सकती हैं जिस मसय यूरोप में आखेट के लिए बड़े शिकार लुप्त होने लगे उस समय पश्चिम एसिशया में प्रारंभिक कृषि के प्रति हुए रूझान के लिए वैसी परिस्थिति नहीं बनी थी, क्योंकि पश्चिम एशिया में प्लीस्टोसीन के उत्तरार्द्ध और होलोसीन के पूर्वाध में जंगली बकरी, मवेशी हिरण जैसे बहुत सारे स्रोत उपलब्ध है। होलोसीन के आगमन के साथ इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत कृषि योग्य अनुकूल जलवायु का विकास हो चुका था। क्योंकि अपेक्षाकृत शुष्क और नमीयुक्त मौसम के कारण कृषि योग्य पौधे के जंगली संस्करण का क्षेत्रीय विस्तार देखा जा सकता है।

नवपाषाणकालीन संस्कृति की मुख्य विशेषताएँ–

तकनीक की दृष्टि से घिसकर बनाये गए और पॉलिस किए गए औजार नवपाषाणकाल की प्रमुख विशेषता रही है। इन औजारों की सतह चिकनी और गोल होती थी, जिससे औजारों में बेहतर धार बन जाती थी। ये औजार पहले के औजारों की तुलना में काफी उन्नत थे। पहले औजारों को खराब होने पर फेंक दिया जाता था, लेकिन अब नए औजारों को खराब होने पर घिसकर दुबारा इस्तेमाल करने योग्य बनाया जा सकता था। इस युग में औजारों में सबसे प्रमुख औजार कुठार (celt) को माना जाता है। जो मूलतः एक कुल्हारी या बसूला होता था। यह जंगल साफ करके जमीन की खेती योग्य बनाने में काम आता रहा होगा। इस काल से ही सर्वप्रथम मृद्‌भांड का इस्तेमाल जान पड़ता है। शुरु में ये बर्तन हाथ से बनाए जाते थे जिससे इसका आकार टेढ़ा मेढ़ा होता था। ये बर्तन खाना पकाने के साथ–साथ अनाज जमा करने के काम भी आते थे। बड़ी संख्या में पत्थर की चक्कियों, मसूल और गोल पत्थरों की खोज से पता चलता है कि मानव अनाज कूटने–पीसने के लिए इनका इस्तेमाल करता रहा होगा। इससे मानव की अनाज पर निर्भरता का ज्ञान होता है। भोजन के लिए अनाजों की खेती और पशुपालन, मानव की निश्चित पेशा बन जाने से वह स्थायी जीवन जीने लगा। इससे मानव समुदायों में भारी वृद्धि संभव हुई। मानव ने अब घास–फूस और लकड़ी के छप्परों में रहना शुरु कर दिया था। इन झोपड़ियों को मिट्‌टी से लेप लगाया जाता था।

इस काल के लोगों में कुछ धार्मिक विश्वास भी पैदा होने लगे थे। कब्रगाहों की खोज से उनके धार्मिक जीवन के कुछ प्रमाण मिलते है। कुछ स्थलों पर समुद्री सीपी या शंख, लेपीस–लाजुली, और अन्य कीमती पत्थरों से बने मनके और आभूषणों की मौजूदगी से ऐसा प्रतीत होता है कि ये काफी दूर से यहाँ लाए गए होंगे।

काल क्रम वितरण

तमाम खोजों और खुदाइयों के परिणामस्वरूप भारतीय उपमहाद्वीप में 6 विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में नवपाषाणकालीन संस्कृतियों के प्रमाण मिलते हैं। इन क्षेत्रों की अपनी–अपनी कुछ खास विशेषताएँ हैं और इनकी अवधि भी अलग–अलग है।

1. उत्तर पश्चिम क्षेत्र (बलुचिस्तान और इसके आस पास के क्षेत्र) (7000BC – 4000BC)
2. उत्तरी क्षेत्र (कश्मीर घाटी) (25000BC – 1500BC)
3. मध्य भारत क्षेत्र (विन्ध्य क्षेत्र) (4000BC – 1200BC)
4. मध्य गांगेय क्षेत्र (पूर्वी उ.प्र. और बिहार) (2000BC – 1500BC)
5. पूर्वी भारत (बंगाल, उड़ीसी, असम)
6. प्रायद्वीपीय क्षेत्र (आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु) (2500BC– 1500BC)

इन समयावधियों को देखने से पता चलता है कि भारत में नवपाषाणकालीन संस्कृतियाँ सभी जगह न तो एक साथ आरंभ हुई और न ही एक साथ समाप्त हुई। यह ध्यान देने योग्य बात है कि समय, स्थान एवं स्थानीय दशाओं में भारी अंतर होने के बावजूद सभी नवपाषाणकालीन संस्कृतियों में अद्‌भुत समानता देखने को मिलती है।

भारतीय उपमहाद्वीप में नवपाषाणकालीन संस्कृतियों का सबसे पुराना प्रमाण खेती और पशुपालन कला का विकास माना जाता है इसके प्रमाण पाकिस्तान के बलुचिस्तान प्रांत में देखने को मिलते हैं। इन स्थलों में बलुचिस्तान में मेहरगढ़, किल्ली गुल मुहम्मद, राना गुण्डाई और उत्तर पश्चिम सीमांत प्रांत में गुमला, रहमान घेरी, टरकाई किला और सराय खोला

RRIJM 2015, All Rights Reserved

है। मेहरगढ़ इन सबसे सबसे प्रमुख स्थल हैं मेहरगढ़ बोलन नदी के किनारे काची मैदान में स्थित है। यह माना जाता है कि खेती ओर पशुपालन कला यहाँ स्वयं ही विकसित हुई होगी। इस स्थल के पास से जले हुए कपास की बीज भी बड़ी संख्या में प्राप्त हुए है। यह बीज दुनिया में कपास की खेती के प्रथम प्रमाण है। इस खोज से यह पता चलता है कि इस अवधि (5500 ई.पू. – 4500 ई.पू.) में भारत में कताई और बुनाई की शुरुआत हो चुकी थी। यहाँ से प्राप्त एक दंत अवशेष का जे.आर.लुकास और उनके सहयोगियों द्वारा अध्ययन किया गया। अपने अध्ययन के बाद उन्होंने कहा कि चरण में लोगों में दांतों की बीमारियाँ पैदा हो गई थी और दांतों की सड़न और दांत गिरने जैसी समस्या उस समय सामान्य थी। इन विद्वानों का मानना है कि संभवतः कार्बोहाइडेट युक्त कृषि उपजित भोजन अधिक खाने से थे बीमारियाँ पैदा हुई होंगी।

उत्तरी भारत में नवपाषाण संस्कृतियों के ज्यादातर स्थल झेलम नदी के मैदान में स्थित है। लेकिन इस संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण स्थल बुर्जहोम और गुफ्कराल है। इस काल में लोग जमीन में गड्ढों में घर बनाकर रहते थे। डी.पी. अग्रवाल के अनुसार कुठार, नोके, मूसल, चक्कियाँ, फसल काटने की दरांतिया (हारवेस्टर) जैसे उपकरण भारत में कहीं और नहीं पाए गए। बुर्जहोम की हड्डी की बनी औजारों की कला भारत की अन्य सभी नवपाषाण कालीन संस्कृतियों में सबसे अधिक विकसित है।

भारत के नवपाषाणकालीन संस्कृतियों में कश्मीर घाटी की संस्कृति का विशेष स्थान है। कश्मीर घाटी की संस्कृति की अपनी कुछ खास विशेषता रही है, जैसे गड्डों के आवास, दरांतियाँ (हारवेस्टर) का इस्तेमाल, बारहसिंगो के सींगो से बने औजारों का प्रचलन, मृतक के साथ उसके प्रिय पशु (कुत्ते) को दफनाने की धार्मिक परंपरा, सामूहिक पशु–बलि और मृतकों के शवों पर सिंदूरों का इस्तेमाल।

मध्य भारत में नवपाषाणकालीन संस्कृति के प्रमाण उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के विन्ध्याचल क्षेत्र से प्राप्त हुए है। यह क्षेत्र उत्तर में गंगा और दक्षिण में सोन नदियों के बीच का क्षेत्र है। बेलन घाटी में कोल्डीहवा और महादहा, मिर्जापुर में सिंदुरिया और मध्य प्रदेश में कुंजुन।

कोल्डीहवा और महागारा के स्थलों से पर्याप्त मात्रा में खेती और पशुपालन के प्रमाण मिले हैं। यहाँ से पालतू पशुओं जैसे भेड़–बकरियों हिरण आदि की हड्डियाँ प्राप्त हुई है। इस क्षेत्र की प्रमुख विशेषता 'धान की खेती' है। इसके प्रमाण यहाँ पाए गए जले हुए बीज और मृद्भांडों में गड़ा धान का मूसा है।

मध्य गांगेय क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण नवपाषाणकालीन स्थलों का पता चला है। इनमें उत्तर प्रदेश में नरहान (सरयू नदी के किनारे गोरखपुर के पास) 'इमलीडीह' (कुवाना जलधारा के पास) और सोहगौरा (राप्ती नदी के किनारे) और बिहार में चिरांद (सारण जिले में घाघरा नदी के तट पर), टेराडीह (बोधगया) तथा सेनूवार (सासाराम के पास) प्रमुख है। इन सबमें चिरांद को इस क्षेत्र का एक प्रतिनिधि स्थल माना जा सकता है।

पूर्वी क्षेत्र में भी नवपाषाणकालीन संस्कृतियों के प्रमाण वाले महत्वपूर्ण स्थलों का पता चला है। इनमें झारखं बरूडीड (जिला सिंहभूम) उड़ीसा में कुचाई (मयूरभंज), गोलाबाई सासन (पुरी) आसाम में दाओजली हादिंग और सरातारू (कामरूप) प्रमुख है।

दक्षिण भारत में नवपाषाणकालीन संस्कृतियों का फैलाव कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु में है। भौगोलिक दृष्टि से यह क्षेत्र उत्तर में भीमा नदी और दक्षिण में कावेरी नदी के बीच का क्षेत्र है।

(i) कर्नाटक में कुपगल, सांगनकुलु, हल्लुर, टेक्कालाकोटा, ब्रह्मगिरि, मस्की, टी. नरसिपुर
(ii) आंध्र प्रदेश में उतनुर, पालावॉय, कोडेकाल, बुदिहाल
(iii) तमिलनाडु में पैयमपल्ली में शामिल है।

दक्षिण भारतीय नवपाषाणकालीन संस्कृतियों की एक प्रमुख विशेषता यहाँ पाए गए बड़े–बड़े राख के टीले है जो जले हुए गोबर से बने बताये जाते हैं। इस क्षेत्र में लोगों की जीविका मुख्यतया पशुपालन पर ही निर्भर थी। खेती उस समय पशुपालन के पूरक के तौर पर की जाती थी। हल्लूर और टेक्कालाकोटा जैसे विभिन्न स्थलों पर इस काल के जले हुए अनाज के दाने मिले हैं। जिससे यही संकेत मिलते हैं कि यहाँ बाजरे, जौ, घुड़चने, काले चने और हरे चने की खेती होती थी।

दक्षिण भारतीय नवपाषाणकालीन संस्कृतियों के शैल चित्रों और खुदे चित्रों की पहचान भी हुई है। इनके प्रमाण कर्नाटक में बेललारी के निकट कुपगल, जिसे अब पीकॉक हिल के नाम से जाना जाता है। यहाँ चित्रों और आकृतियों में हिरण, भेड़, बकरी, मानव आदि के संकेत अंकित किए गए है।

दक्षिण भारतीय नवपाषाणकालीन लोगों ने एक विस्तृत शवाधान (कब्रगाह) प्रणाली का विकास भी कर लिया था। यहाँ प्राथमिक और गौण शवाधानों की प्रथा प्रचलित थी। गौण शवाधानों में मृतकों की कुछ ही हड्डियाँ पाई गई है। यहाँ मृतकों को आवासी क्षेत्र में ही दफनाया जाता था। यहाँ से प्राप्त अंतिम संस्कार की सामग्रियों में प्रस्तर औजार और मृद्भांड शामिल है। टेक्कलाकोटा में सर्वाधिक नवपाषाणकालीन शवाधान खोज निकाले गए हैं।

निष्कर्ष

नवपाषाणकालीन संस्कृतियों में मानव की आजीविका में जानवरों के शिकार और खाद्य संग्रहण की तुलना में पशुपालन और खाद्यान्न उत्पादन का विकास देखने को मिलता है। दरअसल यह मानव का आखेटक एवं खाद्य संग्राहक से पशुपालक और कृषक बनने का एक दौर था। पहले से बेहतर

RRIJM 2015, All Rights Reserved

औजारों ओर होलोसीन युग के आगमन से उपयुक्त वातावरण बन जाने के फलस्वरूप पशुपालन और खेती का विकास संभव हुआ। विभिन्न क्षेत्रों में मानव की आजीविका में यह परिवर्तन अचानक नहीं आया और न ही यह सभी जगह एक समान था। लेकिन फिर भी भारत में विभिन्न क्षेत्रों में नवपाषाणकालीन संस्कृतियों में काफी समानता देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए नवपाषाणकालीन संस्कृतियों के लोग अच्छी तरह पॉलिश किए गए एवं घिसी हुई कुल्हाड़ियों और बसूले इस्तेमाल करते थे, जिन्हें सेल्ट कहा जाता है। लेकिन इस काल में इसके पूर्ववर्ती काल (मध्यपाषाणकाल) के कुछ औजार प्रमुख थे। कश्मीर में बुर्जहोम और बिहार में चिरांद से हड्डियों के औजार इस्तेमाल होने के प्रमाण मिले हैं। जगह–जगह चक्कियों, सिलबट्टों और भण्डारण के पात्रों की खोज भी यही प्रमाणित करती हैं इस युग में मृदभांडों का इस्तेमाल भी शुरू हो चुका था। हाथ से बनाये गए ये मृदभांड बेडौल और अधपके होते थे। इस काल से संबंधित घास फूस के झोपड़ियों के प्रमाण इसी बात की ओर इशारा करते हैं कि लोगों ने स्थायी जीवन अपना लिया होगा। कश्मीर घाटी में गड्ढों के घर इन संस्कृतियों की मुख्य विशेषता है। वैसे इस तरह के घर उत्तर पश्चिमी भारत सरायखोला और आंध्र प्रदेश में नागार्जुन कोण्डा नामक स्थलों में भी पाए गए है। आज भारत में नवपाषाणकालीन संस्कृतियों की उत्पत्ति तथा प्रथम कृषक समुदायों का प्रार्दुभाव यहाँ की आंतरिक सांस्कृतिक परंपरा के कारण माना जाता है।

संदर्भ सूचीः–

[1]. जैन, वी.के., भारत का प्रागैतिहास और आध इतिहास, एक अवलोकन, पाषाणकालीन एवं गैर हड़प्पाई ताम्रपाराणिक संस्कृतियाँ, डी. के. प्रिंटवर्ल्ड (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 2006
[2]. सिंह, उपिन्दर, प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पाषाणकाल से 12वीं शताब्दी तक, पियर्सन पब्लिकेशन, 2017
[3]. थापर, रोमिला, अर्ली इंडिया, फ्राम दी आरिजिन टू ए.डी. 1300, पेंग्यून पब्लिकेशन, 2002
[4]. अग्निहोत्री, वी.के., भारतीय इतिहास और संस्कृति, अलायड पब्लिकेशन

RRIJM 2015, All Rights Reserved